आमने-सामने

सिर्फ़ क़ानून बनाना काफ़ी नहीं

मारिया रोज़ारियो-चेनत्रोने

भारत में सभी बच्चों को यौन अपराधों से सुरक्षित करने वाले एक व्यापक क़ानून की जरूरत काफ़ी समय से अधर में लटकी हुई थी। जब पिछले नवम्बर माह में *यौन अपराध बाल सुरक्षा क़ानून 2012* (पॉक्सो) लागू हुआ तब भारतीय संसद द्वारा बाल अधिकारों की पूर्ति की दिशा में लिया गया यह एक अहम कदम था।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) बताता है कि भारत में बच्चों के साथ बलात्कारों की संख्या बढ़ी है। 2011 में रिपोर्ट किए गए 7112 मामलें 2012 में बढ़ कर 8541 हो गए। एनसीआरबी की नवीनतम रिपोर्ट में 'पॉक्सो' के तहत दर्ज मामलों के आंकड़े नहीं मिले लेकिन भारत सरकार के पिछले आंकड़े हमें इस समस्या के अनुपात का अंदाज़ा देते हैं। 2007 में सरकार ने लगभग 12,500 बच्चों का सर्वेक्षण किया था। जिनमें से 50% से अधिक बच्चों ने बताया कि उन्होंने किसी न किसी तरह का यौन दुर्व्यवहार झेला था। 20.9% बच्चों के साथ तो गुप्तागों को सहलाने या/अथवा उनके अपने गुप्तांगों का प्रदर्शन करने के लिए मजबूर करने सहित गंभीर यौन उत्पीड़न किया गया था।

भारत में यौन प्रताड़ित बच्चों में से 5% ने बताया कि उनकी नग्न तस्वीरें भी खींची गईं। बाल अश्लीलता व्यापार के शिकार बच्चों में 52.01% लड़के थे और 47.99% लड़कियां थीं। उनमें से लगभग 50% बच्चे 5 से 12 वर्ष की आयु के बीच थे और 24% 13 से 14 वर्ष के बीच।

'पॉक्सो' लागू होने से पहले वास्तविक बलात्कार के अलावा अन्य किसी प्रकार के यौन अपराधों के लिए पुलिस को *भारतीय दंड संहिता* में उचित धाराएं नहीं मिलती थीं सिवाए एक दो को छोड़ कर। वे भी वयस्कों और बच्चों के बीच अंतर नहीं करती थीं। अवयस्क लड़कों के साथ ग़ैर प्रवेशात्मक यौन उत्पीड़न के लिए कोई धारा या दफ़ा उपलब्ध ही नहीं थी।

'पॉक्सो' के तहत बच्चों के ख़िलाफ़ यौन अपराधों को चार श्रेणियों में बांटा गया है। (प्रवेश सहित यौन हमला, यौन हमला, यौन उत्पीड़न, बाल अश्लीलता व्यापार)

जब भरोसे या अधिकार के पद पर बैठे व्यक्ति द्वारा यौन हमला व प्रवेश सहित यौन हमला किया गया हो, जब बच्चा 12 वर्ष से कम उम्र का हो या अशक्त हो सामूहिक या निरन्तर होने वाला यौन हमला हो या जब ख़तरनाक हथियारों का इस्तेमाल किया गया हो या जहां कहीं ऐसे हमले के फलस्वरूप शरीर को अतिरिक्त नुकसान या चोट पहुंची हो तब उसे गंभीर मान कर कार्रवाई की जाती है। अपराध को तब भी गंभीर समझा जाता है जब उसके नतीजे में बच्चे को हानि या संक्रणम हो जाए तथा यदि उसे सार्वजनिक रूप से शर्मिन्दा किया गया हो।

इस क़ानून के तहत इन सभी अपराधों के लिए उचित दंड का प्रावधान है। प्रवेश सहित हमले के लिए कम से कम सात साल तथा प्रवेश सहित गंभीर हमले के लिए कम से कम 10 साल की सज़ा का प्रावधान है। एक अन्य प्रगतिशील क़दम यह है कि इस क़ानून के तहत दी गई सूची में से कोई अपराध करने की कोशिश को भी अपराध माना है और वास्तविक अपराध के लिए निश्चित सज़ा की आधी सज़ा दी जा सकती है।

जैसे ही पुलिस में शिकायत दर्ज कराई जाती है बच्चे को राहत देने और पुनर्वास के लिए पुलिस को बाध्य किया गया है

कि वह 24 घंटे के भीतर बच्चे को सुरक्षा दे व उसे नज़दीकी शैल्टर या अस्पताल में भर्ती कराए। पुलिस के लिए यह भी ज़रूरी है कि वह 24 घंटे के भीतर बच्चे के दूरगामी पुनर्वास के बारे में बाल कल्याण समिति (सीडब्ल्यूसी) को अपनी रिपोर्ट दे।

यहां एक अहम समस्या यह है कि *आपराधिक प्रक्रिया संहिता* की धारा 164 के तहत दंडाधिकारी के सामने पीड़ित का बयान तुरंत नहीं बल्कि 2-3 दिन बाद दर्ज कराया जाता है। वह बहुत महत्वपूर्ण समय होता है जब पीड़ित बालक/बालिका और उसके परिवार पर शिकायत वापिस लेने के लिए दबाव या धमकी का इस्तेमाल किया जा सकता है। यह बात ख़ासतौर पर उन मामलों पर ज़्यादा लागू होती देखी गई है जहां अपराधी, पीड़ित का जानकार होता है। धारा 164 के तहत बच्चे का बयान तुरंत दर्ज होना चाहिए तथा सबूत इकट्ठा करने की प्रक्रिया में भी सुधार की ज़रूरत है।

एक व्यापक पीड़ित सुरक्षा योजना की बहुत ज़्यादा आवश्यकता थी जो 'पॉक्सो' में शामिल नहीं की गई है, सिवाए कुछ सुधारों के और वे भी तब लागू होते हैं जब मामला अदालत में आ जाता है। क़ानून की इस कमज़ोरी के कारण कितने ही पीड़ित, अदालत में अपने बयान से पलट जाते हैं।

जैसे ही पुलिस के पास शिकायत की जाती है पीड़ित को तुरंत सुरक्षा दिए जाने की ज़रूरत होती है जो इस क़ानून के तहत नहीं है। परिणाम स्वरूप शिकायत दर्ज कराने के समय भी पीड़ित के पास न तो क़ानूनी सलाह देने वाला कोई होता है और न ही उसे मनोवैज्ञानिक सलाहकार या डॉक्टरी जांच की सुविधा मिलती है।

'पॉक्सो' में अपराध की रिपोर्ट को आवश्यक बताया गया है तथा चूक होने पर सज़ा का प्रावधान भी है। यह क़ानून कहता है कि बच्चे द्वारा यौन अपराध की शिकायत करने पर यदि कोई पुलिस वाला दर्ज नहीं करता तो उसे छः माह तक की सज़ा दी जा सकती है। इसके बावजूद ऐसे उदाहरण है जहां पुलिस रिपोर्ट दर्ज करने में आनाकानी करती है या हल्की व ज़मानती धाराओं के तहत मामला दर्ज करती है। इसलिए यहां सज़ा बढ़ाने की मांग की जाती रही है। हालांकि यह कोई प्रभावकारी समाधान नहीं लगता।

इस क़ानून के एक और आयाम पर भी बात करने की ज़रूरत है। जैसे कि एक बार *हक़* की सह निदेशक भारती अली ने इशारा किया था कि रिपोर्ट लिखने की बाध्यता ने बहुत से मामले सामने लाने में मदद ज़रूर की है लेकिन अनुभवों से मालूम होता कि इस प्रावधान के बावजूद 'पॉक्सो' में दर्ज मामलों में पीड़ित अपना बयान बदल देते हैं और अपराधी को सज़ा नहीं मिलती। इसलिए जब तक पीड़ित मामला दर्ज कराने के लिए मानसिक रूप से तैयार न हो रिपोर्ट करने की बाध्यता से कोई ख़ास फ़ायदा नहीं होता। साथ ही ऐसे मामले जहां रज़ामंदी से लड़का और लड़की भाग जाते है, पुलिस उस लाचार लड़के पर 'पॉक्सो' लगा देती है।

पुलिस का बहाना यह है कि अवयस्कों से जुड़े मामले में अगर वे 'पॉक्सो का इस्तेमाल नहीं करेंगे तो उन्हें और अधिक कठोर सज़ा मिल सकती है।

हालांकि सज़ा, न्याय व्यवस्था का एक अहम हिस्सा है लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि सज़ा ही "न्याय" है। जिस बच्चे ने यौन उत्पीड़न झेला है, हो सकता उस पर उसके काफ़ी गंभीर परिणाम हों जैसे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएं, उसकी आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक प्रगति में बाधा आदि।

यौन उत्पीड़न के साथ प्रायः शारीरिक हिंसा जुड़ी होती है और जिन बच्चों का यौन शोषण होता है उन्हें एचआईवी/एड्स तथा यौन संक्रमण होने का ख़तरा अधिक होता है। शर्मिन्दगी, अपराध बोध, आत्मसम्मान की कमी ऐसी कुछ मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं जिनका सामना भी प्रायः उन्हें करना पड़ता है। हो सकता है कि कुछ बच्चे यौन उत्पीड़न के दर्द से निपटने के लिए आत्महत्या, नशीली दवाईयां व खुद को नुकसान पहुंचाने वाले अन्य तरीके अपना लें।

हक़ में हम लगातार ऐसे मामले देखते हैं जहां बच्चे स्कूल में अपने साथियों से या पड़ोस के बच्चों से इसलिए डरते हैं कि यदि उन्हें पता लग जाएगा तो वे उनका मज़ाक उड़ाएंगे। भारत में जेंडर संबंधी कड़े नियमों, तौर-तरीकों और मर्दानगी की झूठी धारणा के कारण यौन उत्पीड़न के शिकार बच्चों के लिए शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिणाम और भी गंभीर हो सकते हैं। जो लड़के इन अपराधों की रिपोर्ट करते हैं उन्हें कमज़ोर समझा जाता है और लड़कियों के मामले में शायद उन्हें ही इसके लिए दोष दिया जाए। यौन शोषण के शिकार बच्चों को सलाहकारी सहायता देने के हक़ के अुनभवों ने हमें सिखाया है बच्चे चाहते हैं कि अपराधी सीख़चों के पीछे जाए लेकिन उनके पुनर्वास के लिए इससे कहीं अधिक की ज़रूरत होती है। बच्चों को राहत देने की प्रक्रिया में 'पॉक्सो' की कमियां सामने आईं। पीड़ित और उसके परिवार के लिए योग्य

परामर्शदाताओं और मनोचिकित्सकों की सेवाएं मुहैय्या कराने में यह क़ानून सफल नहीं रहा है।

पहली बात तो यह कि बच्चों के मनोचिकित्सकों की सेवाएं बहुत मंहगी हैं और सरकार ने ऐसे सलाहकारों का कोई समूह गठित नहीं किया है जहां बच्चों को भेजा जा सके।

दूसरी बात यह है कि अधिकांश परिवार ऐसे सलाहकारों के पास नियमित रूप से आने-जाने का ख़र्चा भी नहीं उठा सकते हैं। सलाहकार के पास समय बिताने का अर्थ होगा उस दिन की मज़दूरी का हरज़ाना।

'पॉक्सो' राज्य और केंद्र सरकार पर यह ज़िम्मेदारी डालती है कि वे समय समय पर सामान्य जनता बच्चों, उनके माता-पिता और अभिभावकों को इस क़ानून के प्रावधानों के बारे में जागरूक करें, जिसके लिए वे रेडियो, टेलीविजन और समाचार पत्र-पत्रिकाओं का इस्तेमाल कर सकते हैं। हमारा विचार है कि यौन हिंसा की समस्या के लिए इससे भी ज़्यादा सम्पूर्णात्मक कोशिशों की ज़रूरत है। *हक़* के काम के दौरान हमारा लगातार समाज की कठोर सच्चाइयों से सामना होता है। हमने पाया है कि यौन अपराध को एक सीमा से अधिक अहमियत नहीं दी जाती। रोज़मर्रा के अनुभव बताते हैं कि जब तक सलाहकार सेवाएं सस्ती और आवश्यक नहीं बनाई जाती, अपराधों के प्रभावों से निपटना और उबर कर बाहर आ पाना एक सपना ही रहेगा। सामाजिक कार्यकर्ता उतनी अच्छी तरह प्रशिक्षित नहीं होते फिर भी अनेक बार उन्हें मनोचिकित्सक भी बनना पड़ता है जबकि उनकी भूमिका बिल्कुल अलग होती है। इस प्रकार के काम के लिए लोगों से आर्थिक मदद भी कम ही मिलती है क्योंकि कुछ भी देने से पहले वे केस के बारे में सब कुछ जानता चाहते हैं। सच तो यह है कि अधिकांश लोग पीड़ित से खुद मिलना चाहते हैं। यह पीड़ित और उसके परिवार के आत्मसम्मान और गरिमा के ख़िलाफ़ है। बच्चों की सुरक्षा के लिए सरकार से मिलने वाले संसाधन साल दर साल घट रह हैं। बच्चे और उनके परिवार अपने आपको एक अव्यवस्थित व्यवस्था के बीच फंसा पाते हैं। वे प्रायः किसी न किसी ग़ैर सरकारी संस्था, किसी सहृदय वकील या क़ानूनी सहायता सेवा के या किसी संवेदनशील पुलिस अधिकारी के रहमो करम पर रहते हैं। आमतौर पर इसका विकल्प उन्हें कहीं ज़्यादा आसान दिखता है- कोशिश छोड़ देना।

मारिया रोज़ारियो-चेनत्रोने, *हक़-बाल अधिकार सेंटर से जुड़ी हैं।*